P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-I* ISSUE- VIII* November- 2016
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

बदलते वैश्विक परिदृश्य में एशिया

नेहा निरंजन
असिस्टेंट प्रोफेसर,
राजनीति विज्ञान एवं
लोकप्रशासन विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर, मध्य प्रदेश

सारांश

विश्व के सबसे बड़े महाद्वीप एशिया में विभिन्न राष्ट्रों ने अपने स्तर पर संसाधनों का उपभोग करते हुए उन्नत एवं प्रगतिशील राष्ट्रों की श्रेणी में अपना स्थान बनाया है। भारत, चीन, जापान, वर्मा इत्यादि राष्ट्रों ने अमेरिकी हस्तक्षेप को चुनौती देते हुए अपने आप को सुदृढ़ बनाया है। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से एशिया महाद्वीप के भिन्न–भिन्न राष्ट्रों के आपसी संबंध एवं राष्ट्रों में एकजुटता के फलस्वरूप अमेरिकी हस्तक्षेप को नकारा तथा विभिन्न समूहों का निर्माण कर अमेरिका को चुनौती प्रदान की।

मुख्य शब्द : एशिया महाद्वीप, बहुध्रुवीय, विश्व व्यवस्था शंघाई सहयोग संगठन पारस्परिक साझेदारी, लुक ईस्ट पॉलिसी, सामूहिक सहयोग।

प्रस्तावना

एशिया महाद्वीप क्षेत्र एवं जनसंख्या के आधार पर विश्व का सबसे बड़ा महाद्वीप है इस महाद्वीप में तुर्क व रूस का कुछ क्षेत्र भी शामिल है, जबकि ये दोनों राष्ट्र यूरोप में स्थित है। इस महाद्वीप में विश्व के विकसित–अविकसित एवं विकासशील 45 राष्ट्र जैसे दक्षिण में अफगानिस्तान, बंग्लादेश, भारत, मलेशिया, नेपाल, पाकिस्तान, सिंगापुर, श्रीलंका आदि, उत्तर में कजांखस्तान, उज्बेकिस्तान आदि, पूर्व में चीन, जापान, उत्तरी एवं दक्षिणी कोरिया, ताइवान आदि तथा पश्चिम में ईरान, ईराक, इजराइल, साऊदी अरब आदि विद्यमान है। भारत व चीन की सभ्यता दुनिया में सबसे पुरानी सभ्यताओं में एक है। एशिया महाद्वीप ने बीसवीं सदी के दौरान हुये द्वितीय विश्वयुद्ध, वियतनाम युद्ध और खाड़ी युद्ध के प्रभाव को अनुभव किया है। यह महाद्वीप विश्व की प्रमुख भाषाओं – चीनी, जपानी, कोरियाई, संस्कृत, हिन्दी आदि तथा प्रमुख धर्मों – हिन्दु, इस्लाम, बौद्ध, ईसाई, ताओ, पारसी आदि का केन्द्र है। 21वीं सदी में बदलते विश्व परिदृश्य में एशिया के महत्व में वृद्धि हुई है जिस कारण अमेरिका जैसी महाशक्ति का एशियाई देशों की ओर आकर्षण बड़ा है।

उद्देश्य

21वीं सदी में एक ध्रुवीय विश्व की अवधारणा को प्रतिस्थापित करने में बहुध्रुवीय विश्व की अवधारणा सथापित हो रही है जिसमें एशिया महाद्वीप की महत्वपूर्ण भूमिका है। एशिया के महत्वपूर्ण राष्ट्रों के आपसी संबंधों को एवं विश्व राजनीति में एशिया की स्थिति का अध्ययन करना इस शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य है।

एशियाई परिदृश्य

जब यूरोप में शीतयुद्ध समाप्त हुआ तथा यूरोपीय अर्थ व्यवस्था का एकीकरण हो रहा था तब यह मान लिया गया कि सुरक्षा का जो पारंपरिक दृष्टिकोण है, वो अब अप्रासांगिक हो गया है और राज्य एवं उसकी संप्रभुता की अवधारणा को भी अप्रसांगिक माना जा रहा है, क्योंकि इस अवधारणा को बहुत शक्तिशाली तरीके से वैश्विक एवं क्षेत्रीय स्तर पर नकारा जाता रहा है फिर भी पारंपरिक सुरक्षा के जो ढांचे हैं वो यूरोप में अभी भी विद्यमान हैं। यह इस बात से प्रदर्शित होता है कि आज भी नाटो जैसा संगठन इस विश्व में एक शक्तिशाली सैनिक साधन के रूप में विद्यमान है, पूर्वी एवं मध्य यूरोप के देश इस संगठन से जुड़ने के लिए उत्साहित रहते हैं। जहां यूरोप में एकीकरण की प्रक्रिया पुराने संप्रभुता के सिद्धांत से ऊपर उठकर हो रहा है वहीं आज भी एशिया में शक्तिशाली राष्ट्रवाद का उदय एवं एशिया का संगठित होना बहुत हद तक आर्थिक अनिवार्यता को ध्यान में रखकर नहीं हुआ है तथा अब भी एशिया में यूरोप की तरह यह माना जाता है कि उदारवादी प्रजातंत्र ही शासन करने का श्रेष्ठ साधन है।

पश्चिम यूरोप का जहां एक ओर सोवियत रूस से सदियों से विवाद चल रहा था तथा साम्यवाद को लेकर जो आंतरिक युद्ध चल रहा था वो युद्ध अब संयुक्त राज्य के नेतृत्व में खत्म हो गया है तथा एक सफल सहयोगी सुरक्षा

का ढांचा तैयार करने में वह कामयाव रहा है। इस वजह से यूरोपीय राज्यों में आपसी मतभेद, जो इतिहास में सीमाओं को लेकर हुआ करते थे वो धीरे–धीरे समाप्त होने लगे। पश्चिम यूरोप में भी कुछ हद तक इस तंत्र को लेकर विविधता दिखाई देने लगी थी तथा वो अपने आप को विवादों से दूर रखने लगे थे। शीत युद्ध के दौरान एशिया में कोई स्थायी एवं ठोस संगठन का जन्म नहीं हुआ। चीन द्वारा नाटकीय बदलाव एवं अन्य राष्ट्रों द्वारा भी ठीक इसी तरीके की बदलाव की प्रवृत्ति ने एशिया में कोई ठोस एवं गतिशील सुरक्षा के साधनों को पिछले पांच–छः दशकों तक सुश्त कर रखा था। कोई सामान्य दुश्मन के न होने से तथा कोई एक वैचारिक अनुबंध के न होने से, एशिया ने यूरोप की तुलना में सुरक्षा ढ़ांचे को लेकर कई उतार–चढ़ाव देखे हैं। इसके साथ ही एशिया में जो कुछ शैशव्य राष्ट्रवादों का उदय हो रहा था उससे भी वह अपनी ऐतिहासिक दुश्मनी को खत्म करने में असक्षम था।

फरवरी 2007 के मध्य में भारत, रूस और चीन के विदेश मंत्रियों की दिल्ली में त्रिपक्षीय बैठक के बाद जो सांझा वक्तव्य जारी किया गया वह 21वीं शताब्दी के शुरूआती दौर में बहुध्रुवीय अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के लिए निःसंदेह अच्छा संकेत है, यद्यपि इस संदर्भ में काफी कुछ हम पर निर्भर करेगा कि अमेरिका अपने पश्चिम गठबंधन से बाहर की इन तीन बड़ी शक्तियों के निकट आने की प्रक्रिया की किस तरह व्याख्या करता है

चीन विश्व स्तर पर किसी एक देश के वर्चस्व के खिलाफ है। एशिया में वहीं चीन अपना वर्चस्व बढ़ाने में लगा है। वह जब तब अरूणाचल में घुसकर भारत को क्षति पहुँचाता है। चीन की बढ़ती ताकत के कारण जापान तो सशंकित है ही, चीन के समुद्री क्षेत्र में बढ़े कदम देखकर अमेरिका भी चिंतित है। अमेरिका ने समुद्र में चीन के बढ़ते कदम को रोकने हेतु प्रयास भी शुरू कर दिये हैं। इसके लिये जहां दक्षिण चीन सागर में नौसैनिक अड्डे स्थापित किये गये हैं वहीं दूसरी ओर उसने श्रीलंका के साथ सैन्य समझौता करने की पहल कर दी है। अमेरिका का उद्देश्य समुद्री क्षेत्र में चीन के बढ़ते दबाव को रोकने हेतु चेतावनी देना है। रूस भी नए समीकरणों के जरिए अमेरिका की उज्बेकिस्तान, यूक्रेन आदि देशों में बढ़ रही पैठ को रोकना चाहता है। पहले रूस के पास विजन था, तकनीक थी, लेकिन संसाधन नही थे लेकिन अब ऐसा नही है अब रूस शक्ति संतुलन में अपना हिस्सा चाहता है। चीन का कूटनीतिक समर्थन उसकी इसी नीति का हिस्सा है। चीन आज पाकिस्तान का सामरिक साझीदार बन चुका है उसके लिए वह ग्वादर में शीपोर्ट विकसित कर चुका है। वह उसे लड़ाकू विमान और रक्षा के सामान देने जा रहा है। साथ ही वह मलेशिया, म्यांमार और श्रीलंका से भी नजदीकियाँ बढ़ा रहा है। चीन के इस तरह के प्रयासों से जहाँ उसका व्यापार बढ़ रहा है वहीं उसकी ताकत भी बढ़ रही है। इन परिस्थितियों में भारत को अपनी रक्षार्थ प्रयासरत रहना आवश्यक है।

एशिया महाद्वीप में अमेरिका की रूचि प्रारंभ से ही रहीं किंतु एशियाई देशों में वह अपना वर्चस्व स्थापित नहीं कर सका। वर्तमान में दक्षिण एशिया विश्व की महाशक्ति अमेरिका के लिए राजनीति का केन्द्र बना हुआ है, क्योंकि अमेरिका यह कभी नहीं चाहता कि दक्षिण एशिया में भारत एक उभरती हुई शक्ति बने, वैसे भी अगर देखा जाए तो दक्षिण एशिया में, एशिया की एक तिहाई जनसंख्या है तथा कृषि योग्य भूमि, जल संसाधनों, वन संपदा तथा खनिज की दृष्टि से भी यह एक समृद्धशाली क्षेत्र है। साथ ही दक्षिण एशिया के पास एशिया का लगभग दसवाँ, जबकि विश्व का 3 प्रतिशत भू–भाग है। इन तमाम बातों के रहते द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् एशिया में अपने निजी स्वार्थों के लिए महाशक्तियाँ उत्सुक ही नहीं अपितु उतावली भी रही हैं जिसमें अमेरिका मुख्य है। 1990 के दशक के आरंभ में सोवियत संघ के विघटन के साथ शीतयुद्ध एवं द्विध्रुवीय विश्व व्यवस्था का अंत हो गया और विश्व की एकमात्र महाशक्ति–संयुक्त राज्य अमेरिका ने ''एक ध्रुवीय नई विश्व व्यवस्था'' की स्थापना की है। इस नई विश्व व्यवस्था का तात्पर्य है एक ऐसा विष्व, जो कठपुतली की तरह अमेरिका के इशारे पर नृत्य करता हो तथा जिसमें कोई भी राष्ट्र उसके वर्चस्व को चुनौती देने वाला न हो इस विश्व की स्थापना हेतु वह साम, दाम, दंड, भेद की नीतियों का पालन अपनी आवश्यकता के अनुसार करता है दंड नीति का प्रयोग अफगानिस्तान एवं इराक सहित कुछ देशों के विरूद्ध हो चुका है तथा उत्तर कोरिया और ईरान जैसे राष्ट्र हिटलिस्ट पर हैं। नई विश्व व्यवस्था की स्थापना के लिए आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में अमेरिका ने अपने वर्चस्व की स्थापना हेतु कदम उठाए एवं अपने समर्थकों व पिछलग्गु शासकों का पोषण एवं संरक्षण तथा विरोधी शासकों के तख्ता पलट के लिए छल–बल का इस्तेमाल करना उसकी कार्य शैली बन गई है अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष हो या विश्व बैंक अथवा विश्व व्यापार संगठन, न केवल इन वित्तीय संस्थाओं को अपितु संयुक्त राष्ट्र संघ को भी उसने अपने हित साधन का यंत्र बना लिया।

21वीं सदी के आरंभ होने तक संयुक्त राज्य अमेरिका के वर्चस्ववाद के विरूद्ध स्वर तेज व मुखर होने लगे हैं। एक ध्रुवीय विश्व की अवधारणा प्रतिस्थापित करने के लिए बहुध्रुवीय विश्व की अवधारणा जोर पकड़ने लगी है, अतः संयुक्त राज्य अमेरिका के वर्चस्व को चुनौती देने का कार्य एशियाई राष्ट्रों द्वारा ही किया जाने लगा है।

इसके लिए सर्वप्रथम रूस के प्रधानमंत्री ब्लादिमीर पुतिन, जो कि 1990 में रूस के प्रधानमंत्री येवगेनी प्रिमीकॉफ के विचारों से प्रभावित थे, ने भारत, चीन, व रूस के मध्य राजनीतिक मित्रता की योजना प्रस्तुत की। उनके सतत् प्रयास का परिणाम था कि 2002 में न्यूयार्क में चीन तथा भारत के विदेश मंत्रियों की एवं 2005 में ब्लाडीबोस्टक में पुनः तीनों देशों के विदेशमंत्रियों की तथा 2006 में तीनों राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों के नेतृत्व में सेंटपीटर्सवर्ग में शिखर सम्मेलन हुआ। अमेरिकी व वर्चस्ववाद पर रोक लगाने एवं बहुध्रुवीयता को बढ़ाने के लिए रूस ने शंघाई सहयोग संगठन एवं कैस्पियन सागरीय राष्ट्रों का मंच भी स्थापित कर लिया। 16 मई 2008 को रूस के येकटरिनबुर्ग नगर में रूस, चीन, भारत के साथ–साथ ब्राजील भी बैठक में सम्मिलित हुआ और इस तरह एक चतुर्गण मित्रता स्थापित हुई। इस दिशा में

एशियाई राष्ट्रों द्वारा निर्मित ब्रिक्स और इब्सा संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका भी रही है।

ब्रिक्स, उभरती राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के एक संघ का शीर्षक है। इसके घटक राष्ट्र ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका है। इन्ही देशों के अंग्रेजी में नाम के प्रथम अक्षरों क्रमशः B, R, I, C, S, S से मिलकर इस समूह का यह नामकरण हुआ है। मूलतः 2010 में दक्षिण अफ्रीका के शामिल किए जाने से पहले इसे ''ब्रिक'' के नाम से जाना जाता था। रूस को छोड़कर ब्रिक्स के सभी सदस्य विकासशील या नव औद्योगीकृत देश हैं जिनकी अर्थव्यवस्था तेजी से बढ़ रही है। ये राष्ट्र क्षेत्रीय और वैश्विक मामलों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। वर्ष 2013 तक पाँचों ब्रिक्स राष्ट्र दुनिया के लगभग 3 अरब लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं और एक अनुमान के अनुसार ये राष्ट्र संयुक्त विदेशी मुद्रा भंडार में 4 खरब अमेरिकी डॉलर का योगदान करते हैं। इन राष्ट्रों का संयुक्त सकल घरेलू उत्पाद 15 खरब अमेरिकी डॉलर का है। वर्तमान में दक्षिण अफ्रीका ब्रिक्स समूह की अध्यक्षता करता है।

इब्सा एक अनोखा मंच है जो तीन अलग–अलग महाद्वीपों के तीन बड़े लोकतंत्रों एवं प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं अर्थात भारत,ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका को एक मंच पर लाता है जो समान चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। ये तीनों ही देश विकासशील, बहुलवादी, बहुसांस्कृतिक, बहुजातीय, बहुभाषायी एवं बहुधार्मिक राष्ट्र हैं। जी–8 शिखर बैठक के दौरान अतिरिक्त समय में 2 जून 2003 को एवियन में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री तथा ब्राजील के तत्कालीन राष्ट्रपति और दक्षिण अफ्रीका के तत्कालीन राष्ट्रीय के बीच बैठक में इब्सा की स्थापना पर विचार–विमर्श किया गया। जब इन तीनों देशों के विदेश मंत्रियों की 6 जून 2003 को ब्रासीलिया में बैठक हुई तक इस समूह को औपचारिक रूप दिया गया तथा इसका नाम इब्सा वार्ता मंच रखा गया और ब्रासीलिया घोषणा जारी की गई। इब्सा में सहयोग तीन मोर्चों पर है पहला वैश्विक एवं क्षेत्रीय राजनीतिक मुद्दों पर परामर्श एवं समन्वय के लिए मंच के रूप में जैसे की रजनीतिक एवं आर्थिक अभिशासन की वैश्विक संस्थाओं में सुधार डब्ल्यू.टी.ओ. दोहा विकास एजेंडा जलवायु परिवर्तन आतंकवाद आदि दूसरा तीनों देशों के साझे लाभ के लिए 14 कार्य समूहों तथा 6 जन दर जन मंचों के माध्यम से ठोस क्षेत्रों परियोजनाओं पर त्रिपक्षीय सहयोग और तीसरा इब्सा निधि के माध्यम से विकासशील देशों में परियोजनाएं शुरू करके अन्य विकासशील देशों की सहायता करना।

इब्सा की सफलता एक महत्वपूर्ण प्रदर्शन प्रभाव को दर्शाती है। यह विशेषज्ञों के आदान–प्रदान एवं प्रशिक्षण के परम्परागत क्षेत्रों में आगे दक्षिण सहयोग की वांछनीयता एवं संभाव्यता को बहुत स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करती है। वैश्विक मुद्दों पर प्रकटन में योगदान में इब्सा की सफलता दक्षिण के देशों के साथ भागीदारी के महत्व को भी दर्शाती है।

बहुध्रुवीय विश्व की स्थापना में यह चतुर्गण मित्रता मील का पत्थर सिद्ध हो सकती है, क्योंकि विश्व की जनसंख्या का 40 प्रतिशत इन चार राष्ट्रों में निवास करता है, इन राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था विश्व की सर्वाधिक जीवंत तथा संवेदनशील अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। अगले एक दशक में इनके सकल घरेलू उत्पाद का योग विश्व के सर्वाधिक विकसित ग्रुप–8 के देशों के सकल घरेलू उत्पाद के योग से अधिक हो जाएगा, अतः चारों राष्ट्र मिलकर अपनी आर्थिक शक्ति का इस्तेमाल विश्व राजनीति को प्रभावित करने तथा उसे नया मोड़ देने के लिए कर सकते हैं यहीं पर बदलते विश्व में भारत की भूमिका पर प्रश्न चिन्ह लगना आरंभ हो जाता है। एक ओर तो बहुध्रुवीय विश्व की स्थापना के आंदोलन के साथ जुड़ना तथा दूसरी ओर संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ रणनीतिक मित्रता कर उसका जूनियर पार्टनर बनना, यह दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं अतः भारत को सही रणनीति अपनाते हुए अपनी विदेशनीति का निर्धारण करना होगा।

शीतयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् वैश्विक स्तर पर हो रहे त्वरित भू–राजनैतिक, भू–आर्थिक व सामरिक परिवर्तन अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा, शांति, स्थिरता व विकास की प्रकृति व स्वरूप पर प्रभाव डालकर शक्ति संरचना एवं शक्ति संतुलन की दिशा व दशा को नया आयाम दे रहे हैं।

वैश्विक स्तर पर शक्ति संसाधनों में हो रहे त्वरित परिवर्तनों का भारत की रक्षा, विदेश व आर्थिक नीतियों पर गंभीर प्रभाव पड़ रहा है यही कारण है कि बदल रहे भू–राजनीतिक, भू–आर्थिक व सामरिक परिदृश्य से प्रभावित भारत ने भी अपने हितों के रक्षार्थ क्षेत्रीय व वैश्विक स्तर पर अपने आर्थिक व राजनीतिक प्रभाव में वृद्धि हेतु कई कदम उठाए है अपने अतीत व भविष्य के संघर्षात्मक आयामों को दष्टिगत रखते हुए जहाँ एक ओर भारत ने अपने पड़ोसी राष्ट्रों, पाकिस्तान व चीन के साथ पारस्परिक विवादों के समाधान एवं विश्वास बहाली हेतु द्विपक्षीय वार्ताओं को प्राथमिकता दी है वहीं अपनी सुरक्षा, आर्थिक प्रगति और विकास की गति को तीव्र करने हेतु विष्व की महानतम शक्ति अमेरिका के साथ आपसी रिश्तों को सुदृढ़ करने का प्रयास भी किया है।

अमेरिका ने भी भू–राजनीतिक यथार्थता एवं वैश्विक शक्ति संरचना के भावी स्वरूप को ध्यान में रखकर दक्षिण एशिया में अपने आर्थिक, सामरिक एवं राजनीतिक हितों की पूर्ति व संरक्षण हेतु भारत को अपना नैसर्गिक मित्र मानते हुए मैत्रीपूर्ण संबंधों को प्राथमिकता दी है। नाभकीय ऊर्जा, शिक्षा, रक्षा, कृषि एवं अंतरिक्ष अनुसंधान आदि क्षेत्रों में सहयोग पर अमेरिका ने भारत को 21वीं सदी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने हेतु तत्पर रहने के संकेत दिए है। राज्य प्रायोजित आतंकवाद के उन्मूलन के साथ–साथ चीन के बढ़ रहे वर्चस्व और भावी स्पर्धा में उस पर अंकुश लगाने के लिए अमेरिका भारत को भरपूर सहयोग दे रहा है अमेरिका को यह पूर्ण आभास हो चुका है कि यूरोपीय संघ एवं चीन तकनीकी और व्यापार के क्षेत्र में अमेरिका के निकटतम स्पर्धी है वहीं रूस और जापान जैसे सीमित जनसंख्या वाले देश अमेरिका के लिए एशिया में उतने उपयोगी नहीं हो सकते जितना कि भारत। अमेरिका की दृष्टि में भारत बहुसांस्कृतिक, बहुभाषी व संघीय व्यवस्था वाला एक बड़ा लोकतंत्र होने के साथ–साथ विश्व के लिए एक बड़ा बाजार होने के कारण

वैष्विक शक्ति संतुलन में उसका प्रमुख साझीदार बन सकता है। इतना ही नहीं विश्व में सबसे बड़ी पाँचवीं अर्थव्यवस्था के रूप में उभर रहे भारत की बौद्धिक संपदा, विज्ञान व तकनीकी श्रेष्ठता तथा उसकी आकर्षक भू–राजनीतिक व भू–सामरिक अवस्थिति आदि के कारण अमेरिका भारत के मैत्रीपूर्ण संबंधों को 21वीं सदी में आवश्यक एवं महत्वपूर्ण मान रहा है।

वर्तमान एशियाई परिदृश्य एवं अमेरिका

एशियाई परिवेश में व्यापारिक एवं सामरिक दृष्टिकोण को मजबूत बनाने के लिए अमेरिका अत्यन्त सजगता और परिवर्तित कूटनीतियों के अनुरूप अपनी विदेश नीति निर्धारित कर रहा है। अमेरिकी विदेश नीति में भारत–पाक सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे हैं, क्योंकि वह इन दोनों राष्ट्रों को अपना शंतरंजी मोहरा समझता है जिस कारण वह समय–समय पर एक दूसरे के विरूद्व शह भी देता रहता है और आंखें भी दिखाता रहता है ताकि ये दोनों ही मजबूरी वश अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी में अपनी स्वतंत्र आवाज ऊँची न कर सकें। अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को महत्व देने के मूल कारणों में उसकी भू–राजनीतिक सामरिक महत्ता प्रमुख है, साथ ही अमेरिका अपने हथियारों की खरीद फरोख्त की दिशा में पाकिस्तान को एक बड़े क्रेता के रूप में मान्यता देता है इस प्रकार सामारिक आर्थिक हित के साथ सैनिक राजनीतिक एवं राजनयिक स्वार्थवश पाकिस्तान के प्रति अमेरिकी मोह बरकरार है, इसी कारण उसने पाक अधिकृत कश्मीर के गिलगित परिक्षेत्र में अत्याधुनिक हवाई अड्डा बनाने की योजना को कार्यन्वित किया। अड्डे को स्थापित करने के इरादे के पीछे अमेरिकी इरादा साफ है कि इससे वह चीन, अफगानिस्तान और मध्य एशिया के साथ विशेषकर भारत की सामरिक गतिविधियों की निगरानी कर उक्त क्षेत्रों पर अपना प्रभावी वर्चस्व स्थापित कर लेगा। अमेरिकी नीतियों पर पाकिस्तान रजामंद रहे, इसके लिए उसे अनेक आर्थिक एवं सैनिक सहायता प्रदान की गई। भारत–पाक सम्बन्धों को अनवरत तनावपूर्ण बनाए रखने में अमेरिकी विदेश नीति काफी हद तक जिम्मेदार देखी जा रही है।

वर्तमान एशियाई परिप्रेक्ष्य में चीन के साथ अमेरिका के बढ़ते संबंध भी भारत के लिए हितकारी नहीं हैं। अमेरिकी–चीनी संयुक्त वक्तव्य भारत के अनुसार, वर्तमान और भविष्य के लिए 'आतंक का संतुलन' ही है क्योंकि अमेरिका और चीन दोनों ही दक्षिण एशिया में अपनी संप्रभु ताकत को एकाधिकार के रूप में स्थापित करना चाहते है अतः उनके द्वारा लगातार भारतीय हितों को चुनौती दी जा रही है ताकि भारत उनके सामने सदैव कमजोर बना रहे।

अमेरिका ने व्यवहारवादी विदेश नीति के तहत, भारत की अपेक्षा चीन को इसलिए अत्याधिक समर्थन दिया है क्योंकि वह सैन्य और आर्थिक दृष्टि से अधिक सबल है। दक्षिण एशिया में अमेरिका के बाद चीन ही भारत पर भारी दबाव बनाने में सक्षम है साथ ही चीन साम्यवादी देश होने के बावजूद अमेरिका को आर्थिक दृष्टि से अधिक चुनौती दे रहा है जिसे अमेरिका ने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था। विदेशी निवेश के मामले में चीन ने अमेरिका को भी पीछे छोड़ दिया है। 1978 के बाद से यहाँ 808 अरब डॉलर का निवेश हो चुका है और इसमें 60 अरब डॉलर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश तो सिर्फ 2005 में ही हुआ है। 140 करोड़ आबादी के देश में गरीब सिर्फ 3 करोड़ रह गये है। आज शक्ति संतुलन की जो मौजूदा स्थित हैं उसमें कोई देश चीन का दुश्मन नहीं है और न ही कोई चीन को अपने दुश्मन की नजर से देखता है। चीन, जापान और अमेरिका के साथ हर साल अरबों डॉलर का व्यापार करता है, और रूस तो उसके लिए ऊर्जा आपूर्ति का स्त्रोत बना हुआ है। उच्च तकनीकी ज्ञान हासिल करने के लिए चीन यूरोपीय समुदाय की और हसरत भरी निगाहों से देख रहा है क्योंकि अमेरिका व जापान से उसकी बात नहीं बन पा रही है। भारत–चीन के सहयोग के नतीजों को चीनी प्रेक्षक दूरगामी व सकारात्मक नजरों से देख रहे है। उनका मानना है कि यदि सहयोग मजबूती से कायम रहा तो जहाँ एक ओर चीन दुनिया की प्रमुख तकनीकी कार्यशाला के रूप में उभरेगा वहीं भारत सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विश्व का नेतृत्व करेगा। चीन–भारत के साथ अपने आर्थिक एवं रणनीतिक संबंधों को बढ़ाने एवं उनको मजबूत करने के लिए प्रयास कर रहा है यह इसलिए नहीं कि अमेरिका–भारत के संबंध अच्छे हो गये है अथवा होते जा रहे है बल्कि ऐसा करना शक्ति संतुलन के लिए आवश्यक है।

भारत और चीन दुनिया के दो सबसे बड़ी आबादी वाले राष्ट्र है। चीन में एक परिवार–एक बच्चा की नीति के चलते यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आने वाले तीन दशकों में आबादी के मामले में भारत चीन से आगे हो जायेगा। इसमें भी कोई दो मत नहीं कि भारत में युवा आबादी चीन से ज्यादा हैं, फिर भी दस प्रतिशत सालाना की आर्थिक विकास दर से आगे बढ़ रहे चीन की आने वाले तीन दशकों में श्रम शक्ति सबसे ज्यादा होगी। वह दिन भी अब ज्यादा दूर नहीं जब चीन से निकले वैज्ञानिकों, डॉक्टरों और इंजीनियरों की संख्या अमेरिका में सबसे ज्यादा हो सकती है इसलिए अमेरिका, जापान, रूस और यूरोपीय समुदाय चाहेगें कि अंतर्राष्ट्रीय संतुलन बनाए रखने के लिए भारत आर्थिक, राजनीतिक और तकनीकी मामले में चीन की बराबरी में खड़ा रहे। शक्ति संतुलन के सिद्धान्त के मद्देनजर चीन, भारत के मुकाबले पाकिस्तान को लाने के लिए साठ के दशक से ही प्रयासरत रहा है। इस सत्ता के संतुलन के खेल को समझने के लिए भारत को चीन और अमेरिका से सबल होना चाहिये।

चीन, पाकिस्तान को मिसाइल और परमाणु अस्त्रों से सुसज्जित करते रहने के बावजूद भारत से पारस्परिक साझेदारी बनाने के लिए प्रयास कर रहा है। अमेरिका का भारत के साथ सहयोग का रिश्ता प्रगाढ़ हुआ है, फिर भी वह पाकिस्तान को अरबों डॉलर की आर्थिक व सैन्य मदद दे रहा है। भारत में बहुत से ऐसे लोग है जो सोचते है कि हम इन दोनों से एक साथ रिश्ते कायम नहीं रख सकते जबकि ये दोनों देश आपस में तीस अरब डॉलर से ज्यादा सालाना व्यापार करते है। चीन के पास अमेरिकी खजाने के सैकड़ों अरब डॉलर के बॉण्ड है तो दूसरी ओर अमेरिका के पास चीनी मुद्रा

भण्डार है। अमेरिका से यह आशा की जा सकती है कि हमारे राजनीति वर्ग भी शक्ति संतुलन के बारे में राजनीतिक समझ जरूर बढ़ेगी। भारत और चीन दक्षिण एशिया की क्षेत्रीय महाशक्तियाँ है और इनकी बढ़त का असर समूचे विश्व पर है। कोडलिजा राइस मानती है कि भारत और चीन दोनों नाभकीय शक्ति है और ऊर्जा आयत करने की उनमें भारी भूख है दोनों मिलकर दुनिया का तिहाई हिस्सा बनते है। जाहिर है कि अमेरिका और यूरोपीय समुदाय भारत चीन के विकास को अधिक महत्व इसलिए देते है क्योंकि इसमें उनके आर्थिक राजनीतिक हित छिपे है। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि बदलते भू–राजनीतिक परिदृश्य में दक्षिण एशिया महत्वपूर्ण हो उठा है और ऐसे में भारत और चीन के प्रति रिश्ते मजबूत करने के पीछे उनका रणनीतिक सरोकार भी है तो शक्ति प्रदर्शन एवं संतुलन की खामोश कवायद तथा संकेत भी।

चीन अमेरिका का खुले आम विरोध नहीं करना चाहता। इसलिए चीनी प्रवक्ता ने कहा कि, बुश की 'यह यात्रा क्षेत्र में शांति और स्थायित्व का कारण बनेगी' परन्तु दक्षिण एशिया के मामलों में अमेरिकी दखल और दिलचस्पी के निहितार्थ वह बखूबी जानता है, और जो कुछ उसके हितों के विपरीत जाता है, उसके स्पष्ट कूटनीतिक संकेत देने से वह नहीं चूकता। पाकिस्तान के साथ तमाम समझौते नाभिकीय संयंत्र देने तथा सैन्य सहायता का वायदा करके उसने यही किया। उधर चीन के इस निर्णय के बावजूद अमेरिका ने यूरोप में अपने 10 और जर्मनी में 7 राजनयिक कम करके भारत में 12 और चीन में 15 राजनयिक बढ़ाने का निर्णय लिया है तो सिर्फ इसलिए कि वह चीन से छोटे–छोटे मामलों पर बिना कोई बहस किये बहुउद्देशीय वाली राजनीति पर कायम रहना चाहता है।

पाकिस्तान, अमेरिका की धार्मिक आतंकवाद खत्म करने की हर बात नहीं मान सकता, क्योंकि देश के कट्टरपंथी उसे ऐसा नहीं करने देगे। भारत के साथ रिश्ते भी एक हद तक ही सुधार सकता है। यह भी उसकी राजनीतिक मजबूरी है। अमेरिका से उसे हर तरह की सहायता मिल सकती है किन्तु अमेरिका चीन की तरह गुपचुप और खुले–आम दोनों तरह से वैध–अवैध सहायता दे यह संभव नहीं है। ऐसे में अमेरिका के क्रोध को सहन करते हुये भी चीन के साथ रहना उसकी मजबूरी भी है और भारत–अमेरिका को संतुलित करने की रणनीति भी। यही कारण था कि बुश के पाकिस्तान पहुँचने से पहले ही मुशर्रफ ने चीन के साथ अपनी रणनीतिक साझेदारी की घोषणा कर दूरगामी कूटनीतिक संदेश दिये। मुशर्रफ को इसका तत्कालिक लाभ यह हुआ कि उसे अंतर्राष्ट्रीय जगत का तुरन्त ध्यान प्राप्त हो गया। भारत के साथ असैन्य परमाणु समझौते के प्रति चीन ने अपनी नाराजगी जता दी है। ऐसे में बुश उनसे उनकी पाकिस्तान प्रियता के बारे में कुछ पूछ पायेगे इसमें संदेह नहीं है।

भारत–अमेरिका परमाणु समझौते की तर्ज पर चीन और पाकिस्तान आपस में परमाणु सहयोग बढ़ाने का समझौता करने के लिय प्रयासरत है। चीन के राष्ट्रपति हूँ जिनताओं की पाकिस्तान यात्रा के दौरान ऐसे किसी समझौते पर सहमति की आशंका व्यक्त की जा रही है। अमेरिका ने ऐसी आशंकाओं पर चिंता जताई है। कूटनीतिक विश्लेष्कों का मानना है कि यदि ऐसा कोई समझौता होता है, तो यह भारत और पाकिस्तान के साथ चीन के रिश्ते में संतुलन पर प्रभाव डाल सकता है। पाकिस्तान ने चीन से 600 मेगावाट क्षमता वाले 6 परमाणु रिएक्टर देने को कहा है। चीन और पाकिस्तान के बीच नागरिक परमाणु सहयोग के समझौते के दायरे में ही हो सकता है, लेकिन पाकिस्तान इस बारे में पक्का समझौता करने के लिए इच्छुक है। अमेरिका ने पाकिस्तान के साथ ही भारत जैसा समझौता करने से मना कर दिया था, जिसके बाद इस्लामाबाद लगातार इस कोशिश में है कि किसी तरह चीन के साथ ऐसे किसी समझौते पर सहमति हो जाये।

ईरान के परिप्रेक्ष्य में परमाणु मसला काफी उलझा–उलझा सा प्रतीत हो रहा है। इसमें अमेरिका का दबावी हस्तक्षेप, यूरोपिय संघ की जिद एवं ईरान की हठधर्मिता भी शामिल है। इस सम्पूर्ण परमाणु विवाद में भारत की किसी भी तरह की कोई अहमियत दिखाई नहीं देती है। इस बात पर जोर देना चाहिए कि परमाणु अस्त्रों के उत्पादन पर रोक या विराम लगाकर यह सुनिश्चित किया जाये कि कोई भी देश इस संहारक शक्ति का गलत इस्तेमाल नहीं कर सके। परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर करने वाले सभी राष्ट्रों का यही लक्ष्य एवं मन्तव्य होना चाहिये।

भारत और चीन ऊर्जा क्षेत्र में अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए ईरान, बेनेजुएला और म्यांमार जैसे अमेरिकी विरोधी देशों से हाथ मिला रहे है। इससे घबराए, अमेरिकी अधिकारी भारत–चीन को लुभाने के लिए नई नीति बनाये जाने पर जोर दे रहे है। अमेरिका के आर्थिक एवं व्यापारिक मामलों के उपमंत्री ई. ऐंथनी वेन ने भारत और चीन में ऊर्जा संबंधी रूझान विषय पर यहाँ सीनेट की विदेशी मामलों की समिति के सामने कहा कि दोनों देश सूडान, ईरान, बेनेजुएला और म्यांमार समेत ऐसे देशों से ऊर्जा संबंधी समझौते के लिए प्रयास कर रहे है, जहाँ अमेरिकी कम्पनियों की पहुँच नहीं है।

वेन ने कहा कि भारत और पाकिस्तान के अधिकारी ईरान के साथ चार अरब डॉलर की गैस पाइप लाइन बिछाने के लिए तकनीकी, वित्तीय और कानूनी सहयोग कर रहे है। इस मुद्दे पर अमेरिकी विदेशी मंत्री कोडालीजा राइस भी चिंता व्यक्त कर चुकी है उन्होंने कहा, भारत और चीन ऐसे देशों के साथ ऊर्जा सहयोग शुरू करना चाहते है जो वैश्विक स्थिरता के लिए हानिप्रद नीतियाँ अपना रहे है ऐसे में स्थिरता और ऊर्जा सुरक्षा के लिए गम्भीर खतरें पैदा हो सकते है।

जापान अब भारत–जापान–चीन संबंधी त्रिपक्षीय सामरिक सहभागिता को और आगे नहीं बढ़ाना चाहता जैसे कि नई दिल्ली में जापान के राजदूत यशुकुनी ऐना भी कहते रहे है, उनका मानना है कि 2002 में चीन को पीछे छोड़ते हुये समुद्र पार देशों में भारत–जापानी सहयोग पाने वाला सबसे बड़ा देश बन गया है। एवे ने अपनी पुस्तक ''उत्सुकुशी कुनिहे'' यानि एक 'सुन्दर देश की ओर' में लिखा है कि इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि

अगले 10 सालों में भारत–जापान संबंध, जापान–अमेरिका संबंध और जापान–चीन संबंधों में मजबूत हो जाए। उनका मानना है कि जापान के राष्ट्रीय हितों के लिहाज से बहुत जरूरी है कि हम भारत के साथ अपने संबंधों को और मजबूत बनाए वैसे देखा जाए तो दोनों देशों के संबंध बहुत पुराने है। प्राचीन काल में जापानी बौद्ध भिक्षुओं और हिन्दू मतावलंबियों के बीच सांस्कृतिक संबंध स्थापित हुये, रविन्द्रनाथ टैगोर ने 1916 ये 1929 के बीच जापान की पाँच (05) यात्रायें की और सुभाषचंद्र बोस ने भी युद्ध के दौरान जापान से संबंध बनाए। तकनीकि तौर पर द्वितीय विश्वयुद्ध के विजेताओं की अमेरिका के नेतृत्व में सेन फ्रांसिस्कों में हुई कान्फ्रेन्स से भारत अलग रहा और उसने क्षतिपूर्ति संबंध कार्यवाही से भी इंकार कर दिया था।

एशियाई परिदृश्य में आज रूस भी उभरती हुई शक्ति के रूप में स्थापित हो रहा है। 1990 में सोवियत संघ के विखंडन के पश्चात् यह माना जा रहा था कि अब एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में विश्व की समस्त जिम्मेदारी अमेरिकी कंधों पर है लेकिन एक दशक के अंदर–अंदर एशियाई देशों ने इस बात को गलत साबित करते हुए बहुध्रुवीय विश्व की ओर कदम बढ़ाना शुरू कर दिया अतः हम यह कह सकते है कि शीत युद्ध और सोवियत संघ के विघटन के बाद एशिया के देश साम्यवादी और गैर साम्यवादी देशों के बीच सैद्धान्तिक संघर्ष, उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के स्थान पर मानव अधिकार, निःशस्त्रीकरण तथा अस्त्र नियंत्रण, अच्छा शासन, वैश्विक पर्यावरण की रक्षा तथा उदारीकरण जैसे मुद्दो का सामना करने लगे हैं। एशिया के देश भू–राजनीतिक तथा आर्थिक समूह बनाकर समान हितों की रक्षा का प्रयत्न कर रहे हैं। एशिया के ये विकासशील देश संयुक्त राष्ट्र संघ के भविष्य की गतिविधियों और इसके संगठन को आकार देने वाली गतिविधियों से सक्रिय रूप से जुड़े हुए है।

एशिया के विकासशील देश जनसंख्या विस्फोट, विश्व के विभिन्न भागों में महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण रखने की होड़, औषधियों का अवैध व्यापार तथा अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के खतरों से जूझ रहे हैं। नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में भी ये देश अपने न्यायपूर्ण हिस्से को पाने के लिये संघर्षरत हैं।

वर्तमान में एशिया अपने आर्थिक महत्व व विकास के कारण वैश्विक, राजनीतिक एवं आर्थिक गतिविधियों के केन्द्र के रूप में उभर रहा है। चीन और भारत जहाँ तेजी से उभरती हुई अर्थव्यवस्था वाले देश हैं वहीं जापान एक आर्थिक शक्ति के रूप में पहले से ही विद्यमान है। पश्चिम एशिया के तेल उत्पादक राष्ट्र जहाँ तेल कूटनीति के माध्यम से एक मजबूत क्षेत्रीय सहयोग संगठन बने हुए है वहीं पूर्व में सामूहिक सहयोग से बना आसियान संगठन भी सक्रिय है जो विश्व का ध्यान पूर्वी एशिया की ओर खींच रहा है।

पूर्वी एशिया आर्थिक व रणनीतिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है, अमेरिका जहाँ इस क्षेत्र में एक 'निवासी शक्ति' है वहीं चीन इस क्षेत्र में अपनी आर्थिक गतिविधियों को बढ़ा रहा है। जापान इस क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण आर्थिक शक्ति है ऐसे में भारत को अपनी 'पूर्व की ओर देखो' की नीति को अधिक व्यापक व ठोस आधार प्रदान करने की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में चीन की उपस्थिति को क्षेत्रीय देश आर्थिक दृष्टि से सही मान रहे हैं लेकिन सुरक्षा की दृष्टि से उसकी भूमिका को लेकर चिंतित भी है ऐसी स्थिति में अमेरिका की नीति भारत, आस्ट्रेलिया व जापान के सहयोग से इस क्षेत्र में चीन की आर्थिक व सैनिक शक्ति को संतुलित करने की है।

भारत के लिए एक महत्वपूर्ण लक्ष्य क्षेत्रीय सहयोग को मजबूत करना तथा दक्षिण एशिया और दूसरे क्षेत्रीय संगठनों में पारस्परिक लाभकारी स्थितियों का निर्माण करना है जिससे क्षेत्रीय सहयोग के द्वारा सिर्फ शांति और स्थायित्व ही नहीं वरन् लम्बे समय के लिए सुरक्षा और आर्थिक खुशहाली भी प्राप्त की जा सके। अगली महत्वपूर्ण बात भारत को अपना ध्यान पाकिस्तान व चीन के साथ अपने संबंधों पर एक दूसरे को आकर्षित करना होगा, ताकि इन देशों के साथ लगातार बना रहने वाला तनाव हमारे अधिक महत्वपूर्ण हितों पर प्रभाव न डाल सके। इसी के साथ हमें अमेरिका, एशिया व जापान के साथ भी विशिष्ट संबंध स्थापित करने पर ध्यान देना होगा, क्योंकि ये तीनों ही प्रभावशाली व आर्थिक शक्तियाँ रखने वाले देश है।

अमेरिका ने भारत के साथ बेहतर संबंधों की संकल्पना व्यक्त करते हुए दक्षिण एशिया के संदर्भ में अपनी नई नीति की घोषणा की। भारत, चीन, पाकिस्तान और अमेरिका के बीच द्विपक्षीय संबंधों की जो चार ध्रुवीय संरचना कायम की गई है वह भारत के सुरक्षा और सामरिक तन्त्र की ओर केन्द्रित है। यह स्पष्ट है कि भारत और अमेरिका के समान लोकतांत्रिक मूल्य है दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय संबंधों को प्रभावित करने वाला कोई क्षेत्रीय या सीमाई विवाद भी नहीं है इसके विपरीत चीन और पाकिस्तान के साथ ऐसे कारक उपलब्ध हैं जिनके कारण भारत व उनके रिश्तों में किसी मोड़ पर खटास आ सकती है। शायद इस सन्दर्भ में भी भारत के अमेरिका के साथ संबंधों की बात महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत और अमेरिका के बीच परस्पर मजबूत संबंध नई दिल्ली के चीन और पाकिस्तान के साथ समीकरण सुधारने के कार्य में मददगार सिद्ध हो सकते हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति बुश ने यह प्रतिबद्धता व्यक्त की थी कि वह भारत को वैश्विक शक्ति बनाने में सहायता करेंगे। स्पष्ट है कि अगले चार पाँच दशकों में अमेरिका के व्यापक राष्ट्रीय हितों के मद्देनजर भारत के साथ उसके संबंध महत्वपूर्ण होगें। जहाँ दोनों देशों के बीच आर्थिक और व्यापारिक रिश्ते वैश्वीकरण की प्रक्रिया से संदर्भित होंगे वहीं राजनीतिक सैन्य रिश्ते दोनों पक्षों के राजनेताओं द्वारा निर्धारित होंगे। नई रक्षा योजना में सहयोग के अनेक क्षेत्र चिन्हित किये गये है जिन पर साझा प्रयासों के जरिये दोनों देशों के मध्य मजबूत एवं टिकाऊ रिश्ते बनाये जा सकते है।

चीन द्वारा पाकिस्तान को नाभकीय तकनीक शस्त्र व प्रक्षेपास्त्रों की पूर्ति ने भी भारत और अमेरिका के मध्य निरन्तर बढ़ रहे आर्थिक व सामरिक संबंधों को बल प्रदान किया। एक ओर जहाँ अमेरिका भारत को चीन के विरूद्ध प्रतिरोधक भूमिका हेतु इस्तेमाल करने का प्रयास कर रहा है वहीं चीन को भय है कि दक्षिण एषिया में

अमेरिकी वर्चस्व उसकी एषियाई वैष्विक प्रभुत्व की इच्छा के विरूद्ध सिद्ध होगा अतः दक्षिण एषिया में चीन व अमेरिका के मध्य संभावित प्रतिद्वंदिता का राजनीतिक व सामरिक लाभ उठाने हेतु भारत को सतर्कतापूर्वक कदम उठाना चाहिए, इसके लिए भारत को जहाँ एक ओर अपने राजनयिक कौषल का परिचय देना होगा वहीं अपने राजनीतिक लक्ष्य की पूर्ति हेतु उसे अपने सैन्य सामर्थ्य को समुन्नत करते रहना होगा। अब समय आ गया है, जब भारत को दक्षिण पूर्वी एषिया, पश्चिम एषिया एवं हिन्द महासागर क्षेत्र में अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करते हुए 'विस्तारित शक्ति भंगिमा' को प्रदर्षित करने हेतु सक्रिय रहना होगा। इसके लिए नीतियों का निर्धारण व विस्तारण दक्षिण एशिया से बाहर अपने स्त्रातेजिक सीमांत तक विस्तृत करनी चाहिए तभी भारत क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर अपनी उपस्थिति और प्रभाव को स्थापित करने में सक्षम होगा।

इस बात को दृष्टिगत रखते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा एक नई सांस्कृतिक राजनैतिक रणनीति को अपनाया जा रहा है जिसमें भारत एक ओर सुदूर पश्चिम–अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी, के साथ–साथ पूर्व के आसियान देशों और अपने पड़ौसी देशों के साथ विश्वास बहाली के कदम उठा रहा है। इसमें प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की विदेश यात्राओं का विशेष योगदान रहा है। जिसमें एक ओर भारत अमरीका के साथ सामरिक, सांस्कृतिक शैक्षणिक, राजनीतिक और तकनीकि विकास हर क्षेत्र में सहयोग बढ़ा रहा है तो वही अपने पुराने मित्र रूस को भी विश्वास में लेकर चल रहा है। चीन और पाकिस्तान के साथ राजनीतिक विवादों को दरकिनार करते हुए आर्थिक विकास पर बल दे रहा है तो अफगानिस्तान ईरान के पुनर्निमाण में पूर्ण सहयोग देकर शक्ति संतुलन को अपने पक्ष में करने का प्रयास कर रहा है। भारत की लुकईस्ट पालिसी, सिके माध्यम से भारत आसियान में बड़ा साझेदार बना था उसे एक कदम आगे बढ़ाते हुए 'लुक एक्ट के रूप में पुर्नपरिभाषित किया है। नवंबर 2016 में होने वाली प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की जापान यात्र.ा भी महत्वपूर्ण है जिसमें बड़े आर्थिक और तकनीकी समझौते होने की संभावना है।

निष्कर्ष

निश्चय ही एशिया महाद्वीप के ये सभी राष्ट्र– चीन, रूस, जापान, भारत, ईरान, आसियान यूरोप के शक्ति संतुलन को एशिया में स्थापित कर रहे हैं ऐसे में यह कहना कि आने वाली सदी एशिया की होगी, संभवतः सही प्रतीत होती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दीर्घपाल सिंह भंडारी, दक्षिण एषिया में अमेरिका की स्ट्रेटजी, सिविल सर्विसेज क्रोनिकल'', दिसम्बर 2006।
2. कर्नल आर. हरीहरण, रिटार्यड, इण्डिया–चायना रिलेशन, गेटिंग आउट ऑफ द ग्रिडलॉक, वर्ल्ड फोक्स, इण्डो सेन्ट्रिक फोरिन अफेर्यस जर्नल, वाल्यूम 31, नम्व.–दिस., 2010, पृ. 522।
3. India and The Balance of Power ,C. Raja Mohan, 2006 *Foreign Affairs* "China's Rise to leadership in Asia – strategies, obstacles and achievements" Shaun Breslin , Hamburg, December 2006.
4. India's Approach to Asia: Strategy, Geopolitics and Responsibility, Namrata Goswami 2016 Pentagon Press ISBN 978-81-8274-870-5
5. Asian Strategic ReviewS. D. Muni 2007 Academic Foundation ISBN 978-81-7188-667-8
6. southasiajournal.net